ARYAVART SHODH VIKASH PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBBIL/2014/66218 PP. NO.- 212-214
ISSN NO.-2347-2944
Vol.-8, No.-II, Issues-IX YEAR- Dec-2017

भ्रष्टाचार भारत के लिए नया नहीं

डॉ0 शशांक शेखर द्विवेदी
एसो0 प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग– के0बी0पी0जी0 कालेज, मीरजापुर (उ0प्र0) भारत

स्वीकृत मनोवृति के रूप में भारत में भ्रष्टाचार का दावानल प्रसरित होता चला जा रहा है। पं0 माखन लाल चतुर्वेदी लिखते है कि कितने संकट के दिन है। व्यक्ति ऐसे चौराहे पर खड़ा है, जहां भूख की बाजार दर बढ़ गई है, पाई हुई स्वतंत्रता की बाजार दर घट गई है। पेट के ऊपर हृदय और सिर रखकर चलने वाला मानव जैसे हृदय और सिर पर पैर रखकर चल रहा है। खाद्य पदार्थों की बाजार दर बढ़ी हुई है और चरित्र की बाजार दर गिर गई है (रचनावली सम्पादक श्रीकान्त जोशी, वाणी प्रकाशन)। भ्रष्टाचार को लेकर मध्य वर्ग और युवाओं में भारी आक्रोश है। देश का एक बड़ा जनमानस प्रभावित और परेशान है। भारत में भ्रष्टाचार की जड़ें इतनी मजबूत और गहरी है जिसे देखकर किसी भी संवेदनशील नागरिक के मन में क्षोभ पैदा होना स्वाभाविक है। आखिर ऐसा क्या है जिसके चलते हमारे देश में भ्रष्टाचार लाइलाज हो गया है? भ्रष्टाचार एक अपराध है। यह उस समाज में भी मौजूद था जिसे हम आदर्श मानते हैं।

ऐतिहासिक ग्रंथों से पता चलता है कि प्राचीन समाजों में भ्रष्टाचार संभवतः इसलिए कम था क्योंकि तब परम्पराएं व्यवहार का निर्देशन करती थी और छोटे–छोटे घटक होने के कारण नियंत्रण तत्काल किया जा सकता था। पर जब राजनीतिक घटक बहुत विस्तृत होता है, तब कुछ विशेष प्रकार के कार्यों के लिए कुछ साख पूर्व–आवश्यकताएं भ्रष्टाचार को जन्म दे देती है। प्रारम्भिक अभिलेखों से भी पता चलता है कि भ्रष्टाचार की प्रथा मानव समाज जितनी ही पुरानी है तथा इसकी उत्पत्ति के दो मूल स्थल रहे हैं– समाज और प्रशासन। आदि प्रशासन भ्रष्ट हो, तो समाज भी भ्रष्ट होगा और यदि समाज भ्रष्ट है तो व्यक्ति के जीवन के विभिन्न पहलुओं में भी भ्रष्टाचार का प्रवेश होगा। प्राचीन भारत में समाज और सरकार राजनीतिक भ्रष्टाचार से मुक्त थे, लेकिन तत्कालीन अभिलेखों में प्रशासनिक न्यायिक और व्यावसायिक क्षेत्रों में भ्रष्टाचार के ऐसे अनेकों उदाहरण मिलते हैं जिनका प्रमुख कारण पक्षपात, सत्ता और सम्पत्ति की पिपासा रही है।

प्रशासनिक अधिकारी और भ्रष्टाचार– प्रशासनिक कार्य हेतु राजा को विभिन्न वर्गों के कर्मचारियों की आवश्यकता पड़ती है। (मनु 7.55; शुक्रनीतिः 2.1) ये प्रशासनिक अधिकारी ही शासन का वास्तविक भार वाहन करते हैं। भारतीय शासनतंत्र में उन्हें महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करते हुए राजपुरुष, नृपसेवी, राजोपजीवी, परिच्छ आदि पर्यायों से संबोधित किया गया है (शान्ति पर्व : 83.10; 83.26; 84.5) लेकिन ऐतिहासिक ग्रंथों से पता चलता है कि यह प्रशासनिक अधिकारी भ्रष्टाचार से मुक्त नहीं थे। कौटिल्य (अर्थशास्त्र : 1.10) ने इनके रिश्वतखोरी और धर्म के दुरुपयोग का सूक्ष्म विवेचन करते हुए यह व्यवस्था दी है कि धर्मोपधा, कामोपधा, अर्थोपधा तथा भयोपधा के जरिए इनके चरित्र की परीक्षा लेते रहना चाहिए (शांतिपर्व : 118.4) कौटिल्य ने सहकारी कर्मचारियों द्वारा गबन के लिए अपनाए जाने वाले तरीकों का भी उल्लेख किया है (दशकुमारचरित : 8)। और गबन के 40 प्रकार बताए हैं। उसका विश्वास था कि सरकारी कर्मचारी बिना गबन किए रह नहीं सकते। वह लिखता है कि "जिस प्रकार पानी में रहती हुई मछलियों के बारे में यह जानना कि वे कब पानी पीती हैं, बड़ा कठिन है, उसी प्रकार राज्य के विभिन्न विभागों में नियुक्त कर्मचारियों एवं अधिकारियों के घूस लेने के विषय में जानना बहुत कठिन है"।

भ्रष्टाचार और न्यायिक प्रशासक– प्राचीन काल में न्याय प्रशासन का संगठन राज्य का प्राथमिक कर्तव्य था (मुकर्जी 1920:132)। लेकिन महाभारत कौटिल्य के अर्थशास्त्र आदि ग्रंथों को देखने से पता चलता है कि न्यायिक प्रशासन उस काल में भी भ्रष्टाचार से मुक्त नहीं था (दशकुमारचरित : 8:23; मत विलास प्रहसन 23–24)। यदि न्यायाधीश रिश्वत लेते, पर पत्नी से अवैध सम्बन्ध रखते, गलत निर्णय करते, अनैतिक कार्यों में पाये जाते, तो उन्हें कठोर दण्ड का प्रावधान था (कश्यप : 1973 : 721) कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी विभिन्न उत्तेजनात्मक कार्यवाहियों द्वारा न्यायाधीशों की परीक्षा लेते रहने का निर्देश दिया गया है। विष्णु स्मृति में भ्रष्ट न्यायाधीशों की सम्पत्ति जब्त कर उन्हें निष्कासित करने या मृत्युदण्ड की व्यवस्था दी गई है।

गुटबन्दी और अनैतिकता– अद्यतन नगरपालिकाओं और विधानमंडलों की भांति प्राचीन काल में भी गुटबन्दी दलबन्दी और अनैतिकता व्याप्त था (अल्तेकर 1959 : 93) इस गुटबन्दी के मुख्य केन्द्र थे राजाओं के राजदरबार, सभागृह। आजकल की तरह प्राचीन काल में भी संघ के सदस्य अधिकार प्राप्ति के लिए गुट बनाया करते थे। दौड़.धूप करने वाले,

अनुरूपी लेखक

गुटबन्दी में निपुण चाटुकार व्यक्ति अधिकार प्राप्ति में सफल सिद्ध होते थे। कुछ लोग तो अपनी अनैतिकता और दुष्टता के कारण प्रभावशाली बन जाते थे। अंधकवृष्णि–संघ में अहूक और अक्रूर इस प्रकार के महानुभाव थे (अल्तेकर 1959:93)

भ्रष्टाचार : सेक्स और सुंदरियां– काम को प्रमुख पुरुषार्थ माना गया है। कामवासना आज के सभ्य मनुष्य की भांति आदिम मनुष्य के सामने भी समस्या रही है (पुणेकर एवं राव : 1967:1)। महाभारत में इस आशय के प्रसंग मिलते हैं कि प्राचीन काल स्वच्छन्द कामतृप्ति को पाप नहीं समझा जाता था बल्कि उसका व्यापक प्रचलन था। यहां तक कि अभिनेताओं, संगीतज्ञ एवं अपनी पत्नी की वृत्ति से जीविका चलाने वालों की स्त्रियों से सम्भोग करने को अपराध नहीं माना जाता था (कश्यप : 1973 : 832)। बलात्कार निन्दनीय था लेकिन यह भी (कात्यायन : 830) कभी–कभार हो जाता था। अपरार्क (854) और स्मृतिच0 (2.8) में बलपूर्वक, धोखाधड़ी, धोखे और काम पिपासा के वशीभूत होकर संभोग लिप्त होने के अनेकों उदाहरण मिलते हैं स्वर्गिक अप्सराओं की सहायता से इन्द्र ने जिस प्रकार का भ्रष्टाचार किया, उसकी कोई सानी नहीं। महाभारत युद्ध के समय कर्ण की यह घोषणा कि जो उसे अर्जुन का पता बताएगा, उसे वह रेशमी बालों एवं निर्दोष नखशिख वाली सौ सुन्दरियां भेंट देगा। सेक्स के क्षेत्र में भ्रष्टाचार का ही नमूना है। बौद्ध ग्रंथों में भी इस क्षेत्र में भ्रष्टाचार के उदाहरण मिलते हैं। बुद्ध का कहना था कि संघ में भिक्षुओं का जवान भिक्षुणियों और दासियों से मेल–जोल उन्हें पथ भ्रष्ट कर देगा और पांच सौ वर्षों तक यदि स्थिति यही रहेगी तो संघ का जीवन अस्त–व्यस्त हो जाएगा।

जालसाजी तस्करी और लूट–खसोट– याज्ञवल्क्य उनके लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था दी है, जो नापतौल के बटखरों, सिक्कों आदि से गड़बड़ी करते हैं या उन्हें अनाधिकृत ढंग से बनाते हैं। लेकिन कुछ ग्रंथों को देखने से पता चलता है कि मोहरों और दस्तावेजों की जालसाजी इस तरह से की जाती थी कि वास्तविकता का पता लगाना अत्यन्त दुष्कर था (मनुस्मृति : 9.292; मत्स्यपुराण : 227.184)। हर्षवर्धन का मधुबन ताम्र लेख उस काल की जालसाजी का एक ऐसा ही ज्वलन्त प्रमाण है। जुआ, तस्करी, चोरी और जेबकटी का प्रचलन भी प्राचीन काल में था (मनु 8.322; विष्णु धर्मसूत्र 6.136; कौटिल्य 3.17; ऋग्वेद 6.28.3)। इसके अनेकों उदाहरण प्राचीन काल में मिलते हैं। तस्करी से भी वह समाज मुक्त नहीं था। उस समय तस्कर दो प्रकार के होते थे प्रकाश तस्कर और अप्रकाश तस्कर।

प्रकाश तस्कर में गलत तराजू एवं बटखरे बनाने वाले, जुआरी, नकली वैद्य और वैश्याएं शामिल थीं तथा अप्रकाश तस्कर में पशु चोर, स्त्री चोर तथा कुछ व्यापारी शामिल थे। यह छिपे तौर पर सेंध मारने वाले हथियार या अन्य सामान लेकर चलते थे (कश्यप : 1973 : 825)

सातवीं–आठवीं शताब्दी के आते–आते भ्रष्टाचार इतना बढ़ गया था कि मन्दिरों से देव प्रतिमाएं भी चोरी होने लगी। कश्मीर के एक जमींदार द्वारा भुवेश मन्दिर की देव–प्रतिमाओं को लूटने की घटना का विवरण ''राज तरंगिणी'' (7.507) में मिलता है। कश्मीर का नरेश शंकर वर्म्मन भी 64 मन्दिरो को लूट लिया था। हर्श के बारे मे कहा जाता है कि उसने न केवल मन्दिरो को कोशों को हटवाया, वरन् मूर्तिया उखाड़ने के लिए ''देवोत्पतन नायक'' नामक अधिकारी की भी नियुक्ति की।

कालाबाजारी, मिलावट और मुनाफाखोरी– तस्करी, कालाबाजारी यद्यपि व्यापार संघ के नियमो के विपरीत था, फिर भी कुछ व्यापारी तस्करी, आवश्यक शुल्क की चोरी आदि कर लिया करते थे। याज्ञवल्क्य के अनुसार घी, नमक, इत्र, चावल दवा आदि मे मिलावट कर उन्हे बेहतर दिखाने की कोशिश की जाती और मुनाफा कमाया जाता। साधारण पत्थर कीमती रत्न के रूप मे खपा दिये जाते। चन्दन का इत्र छिड़ककर बिल्व की लकड़ी चन्दन बताकर बेची जाती थी। शाशन को व्यापारियो की इन सारी गतिविधियो का पता रहता था, इसीलिए प्रारम्भिक विधि निर्माताओ ने मुनाफाखोरी के प्रति शासको को सतर्क कर दिया था। ''मृच्छकटिक'' मे तो यहॉ तक कह दिया गया है कि व्यापारी ''धोखेबाज'', सुनार ''चोर'' और दरबारी ''लोभी'' न हो, ऐसा असम्भव हैं।

निष्कर्ष– उपरोक्त तथ्यो से पता चलता है कि सभ्यता के आदिकाल से ही नैतिक क्षरण की जो प्रक्रिया आरम्भ हुई, वह नवीन परिवर्तित स्वरूप मे आज भी गत्यात्मक है। सम्भवतः इसी कारण राष्ट्रीय चरित्र का गौरवशाली पक्ष अंधकूप की ओर सतत अग्रसर दृष्यमान प्रतीत होता है और भारत की छवि को दागदार बनाता जा रहा है। भ्रष्टाचार को समाप्त करना है तो उसकी भयावहता से डरे बिना कही से भी शुरूआत की जा सकती है। यह कहा जा सकता है कि कुल मिलाकर भ्रष्टाचार की जड़ में व्यवस्था सर्वोपरि है और व्यवस्था को बदले बिना हम भ्रष्टाचार से लड़ाई नहीं लड़ सकते। कानून बना देने से परिवर्तन आ जाने की अपेक्षा करना ठीक नही है।

यदि हम भ्रष्टाचार का विनाश और पूर्ण नैतिकता का युग चाहते हैं, तो इसके लिए उच्चस्थ स्तर पर हमें नैतिकता और पूर्ण सच्चरित्रता का सूत्रपात करना होगा। यह सच है कि मनुष्य जन्म से ही स्वार्थी होता है और सभी कालों में, सभी वर्गो में भ्रष्टाचार मौजूद था। फिर भी निरन्तर सामाजिक दबावों, शिक्षण एवं प्रशिक्षण के व्दारा बुरे व्यक्ति भी सन्त बनाये जा

सकते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अल्तेकर, ए0एस0: प्राचीन शासन – पद्धति, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, 1959.
2. कश्यप, अर्जुन सी0 : धर्मशास्त्र का इतिहास, हिन्दी समिति, लखनऊ 1973.
3. दीक्षित, प्रेम कुमारी : महाभारत में राज्य–व्यवस्था, अर्चना प्रकाशन लालबांग, लखनऊ 1970.
4. पुणेकर एवं राव : बम्बई में वेश्यावृत्ति का अध्ययन, ललवानी पब्लिशिंग हाउस बाम्बे, 1967.
5. मुकर्जी, आर0के0: प्राचीन भारत में स्थानीय स्वशासन, आक्सफोर्ड, 1920.

सहायक वैदिक साहित्य और काव्य

1. माखन लाल चतुर्वेदी, रचनावली सम्पादक श्रीकान्त जोशी, वाणी प्रकाशन कमला नगर, दिल्ली, 1983.
2. अपरार्क: आनन्दाश्रम, पूना, 1903–1904.
3. कात्यायन श्रौतसूत्र: बनारस, 1928.
4. कौटिलीयार्थशास्त्र : वेंकटनाथाचार्य (सं0) , मैसूर, विश्वविद्यालस, 1960.
5. दशकुमारचरित : दण्डी, बम्बई, 1900.
6. विष्णुस्मृति: जे0 बाली (सं0) कलकत्ता, 1881.
7. मत्स्यपुराण: जीवानन्द, कलकत्ता, 1876.
8. महाभारत : जी0वी0एस0 शास्त्री, मद्रास, 1931–1935.
9. मनुस्मृति : बम्बई, 1945.
10. राजतरंगिणी : एम0ए0 स्टीन (अनु0), लन्दन, 1900.
11. शुक्रनीति : वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई, संवत् 2012.
12. ऋग्वेद संहिता : पार डी, सूरत, 1957.

*****